GLIMPSES IN LANGUAGE AND LITERATURE

Chief Editor

Mr. K.B. Giri

Dr. S.V. Kshirsagar

Dr. S.B. Donge

Dr. S.U. Kalme

ISBN No. 978-93-83995-65-4
Anuradha Publications, Nanded

Glimpses in Language and Literature

Chief Editor
Mr. Kailas B. Giri
Dr. Sanjiv V. Kshirsagar
Dr. Satish B. Donge
Dr. Sachin U. Kalme

ISBN No. 978-93-83995-65-4

Published by:
Anuradha Publications
Cidco-Nanded

Publication Year: 2019-20

Price- Rs. 100/-

Copyright © ACS College, Gangakhed

Printed by
Gurukrupa Offset,
Near Police Station, Gangakhed

Typesetting by:
Simran Computers
Gangakhed Dist.Parbhani

Cover Designby:
Mr. Imran K. Mohammad

CONTENTS

Sr. No.	Content
01	**Non-Verbal Communication as an Integral Aspect of Personality** Dr. Sanjay N. Kadam & Dr. Tukaram Bobade
02	**Theme of Partition and Religious Discord in Khushwant Singh's "Treain to Pakistan"** Mr. Kailas B. Giri
03	आधुनिक हिंदी उपन्यासों साहित्य में दलित चेतना प्रा. डा. निवृत्ती एस. भेंडेकर
04	**Feminine Consciousness Reflected In Rabindranath Tagore's Play 'Chitra'** Dr. Sanjay N. Kadam
05	दृक-श्रव्य प्रसार माध्यम : दुरदर्शन और हिंदी विज्ञापन भेंडेकर एन.एस.
06	**Voice to the Unvoiced In the Play of Mahesh Dattani'S 'Tara'** Mr. Kailas B. Giri
07	आंबेडकरवादी समीक्षेचा मानदंडः मूल्यवेधी सम्यक समीक्षा डॉ. कीर्तीकुमार मोरे
08	A Complex East- West Culture Conflict In Girish Karnad's "Driven Snow" Dr. R. T. Bedre, & Dr. Sanjay N. Kadam
09	आईच्या संवेदनशिलतेने क्रांती घडवू पाहणारी कविता: प्रश्नांची मातृभाषा प्रा.डॉ. कीर्तीकुमार मोरे
10	Anita Desai's 'Fire on the Mountain: A Critical Study **Mr. Kailas B. Giri**

आधुनिक हिंदी उपन्यासों साहित्य में दलित चेतना

प्रा. डा. निवृत्ती एस. भेंडेकर
सहाय्यक प्राध्यपक, हिंदी विभाग,
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
गंगाखेड. जि. परभणी, (महा.) पिनः 431514.
E-mail. nivratibhendekar@gmail.com

भारत वर्ष एक प्राचीनतम् राष्ट्र है। इसमें समाज का विभाजन मूलतः जाति तथा वर्ण के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र इन चार वर्णों में किया गया है। इस व्यवस्था के अनुरूप प्राप्त जन्म में मात्र वर्णक्रम के अनुरूप ब्राह्मण-अध्ययन-अध्यापन करेंगे, दक्षिणा-दान लेंगे (देंगे नहीं), क्षत्रिय- लढ़ने के कार्य के साथ संरक्षण करेंगे (ब्राह्मणों का), वै'य-व्यापार-उद्योग करेंगे, व्यापार के माध्यम से धन संचय करेंगे तथा शुद्र- उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा करेगें। इसमें एक वर्ण दूसरे वर्ण का काम नहीं करेगा। दलित वर्ण में वे जातियाँ सम्मिलीत है, जो जाति सोपान क्रम में निम्न स्तर पर है और जिन्हें सदियों से दबाकर रखा गया है। समाज में इस वर्ग के लोगों को कभी 'शुद्र', तो कभी 'हरिजन' और वर्तमान में 'दलित' कहा गया है। डा. म.ना.वानखेडे के अनुसार ''दलित शब्द की परिभाषा केवल बौद्ध या मागासवर्गीय ही नहीं, अपितु जो पिसे गये हैं, जो श्रमजिवि हैं वें सभी 'दलित' इस परिभाषा में समा जाते हैं।''[1] मराठी दलित साहित्य के दुसरे एक विद्वान नामदेव ढसाल जी का मानना है- '' दलित अर्थात पिछड़ी जन-जाति, बौद्ध, मेहनतकश लोग, मजदूर, भूमिहीन, किसान, मजदूर, घमंतू जमात, आदिवासी आदि।''[2] तो राजा ढाले जी के मतानुसार-'' केवल बौद्ध या पिछड़ा वर्ग ही नहीं तो जो जो पिसे गये हैं वे श्रमजिवि हैं ऐसे सभी दलित मानने से अन्याय होता है।''[3]

उपरोक्त मतों पर विचार किया जाए तो सामान्यतः जो व्यवस्था के दमन चक्र में पिसे गये है, जिनके मनुश्यत्व को नकारा गया है, श्रमजिवि, किसान, भूमिहर, मजदूर, विमुक्त जन-जातियाँ सभी 'दलित' में समा जाते हैं। दलितत्व यह अलग-अलग धरातल पर कम-अधिक मात्रा में वैश्विक रूप में देखने को मिलता है। अतः इनमें उभरी हुई समस्याओं में से ही 'दलित साहित्य' की निर्मिती हुई है।

दलित संवेदना का अर्थ-

रचनाकर के जगत में संवेदना का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। संवेदना यह साहित्यकार के लिए मार्गदर्शक तत्व होती है। इसी तत्व के अनुरूप जब कोई साहित्यकार साहित्य सृजन करता है तो उसका साहित्य मर्मस्पर्शि बन जाता है। यही संवेदना रचनाकार की भूमिका निर्देशित करती है। दलित संवेदना यह रचनाकार की जीवनदृष्टि, भूमिका तथा उसके साध्यों से संबंधित एक प्रेरक शक्ति तथा मार्गदर्शाक तत्व होती है। दलित संवेदना अर्थात, जिसमें दलित जीवन परिवर्तन का विचार हो, आशावादी दृष्टि हो, दलित जीवन के दुःखों को तरलतापूर्वक अंकीत करने की प्रवृत्ति तथा सामाजिक सरोकर का नाता हो, ऐसी

संवेदना ही 'दलित साहित्य का आधार है। दलित संवेदना के संबंध में प्रा. कुरूंदकर जी का कहना है, ''दलित साहित्य का आधार किसी जाति में जन्म लेना यह नहीं, अपितु वह आधार सामाजिक संवेदना में खोजा जाना चाहिए।''[4] हिंदी उपन्यास साहित्य में ऐसी सामाजिक संवेदना का सक्षक्त रूप आसानी से पाया जाता है।

दलित संवेदना की विशेषताएँ-

1. जिस साहित्य में स्वानुभूति की अभिव्यक्ति हो।
2. जो साहित्य जीवन को निकट से देखता हो।
3. जिस साहित्य में मानव की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई हो, उसके मुनष्यत्व के अधिकार को नकारा न गया हो।
4. यह साहित्य मानवतावादी होने के कारण, मानवीय अनुभव देनेवाले सहजीवन को अपनाता है।
5. विद्रोह, संघर्"ा यह इस साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता है।
6. क्रांति की प्रेरणा यह इस साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता है।
7. इस साहित्य का केंद्र बिंदु 'मानव' है।
8. प्राचीन रूढ़ीयों, परंपराओं का यह साहित्य खंड़ण करता है।
9. बंधनों से मुक्त मानवीय जीवन का विचार इस साहित्य में किया गया है।
10. समतायुक्त सहजीवन की कामना इस साहित्य में की गई हैं।

दलित संवेदना तथा चेतना में अंतरः-

दलित संवेदना तथा चेतना में सुक्ष्म अंतर है। दोनों का भी संबंध व्यक्ति 'मन' से हैं। जिस प्रकार घंटे पर आघात करने पर पहले टंकार होती है और बाद में झंकार निकलती है। ठिक उसी प्रकार संवेदना तथा चेतना की स्थिति है। व्यक्ति को 'संवेदना' पहले होती है और 'चेतना' बाद में मिलती है। दलित साहित्य इससे अछूता नहीं। इस साहित्य की 'संवेदना' यह दलितों पर किये गए अन्याय, अत्याचार, शोषण, दमनचक्र आदि है तो, 'चेतना' यह शाहु, फुले, डा. आंबेडकर आदि के विचार है, ऐसा कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

हिंदी दलित साहित्यः विद्वानों के मतः-

हिंदी में दलित जीवन को रेखांकित करने वाले अनेक रचनाकार है। जिन्होंने दलित जन-जीवन का सजीव अंकन अपने साहित्य में किया है। इस दलित साहित्य को अनेक विद्वानों द्वारा परिभाषित करने का प्रयास किया है। जिनमें बाबुराव बागुल जी का कहना है, '' दलित साहित्य वह लेखन है, जो वर्ण व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मुनष्य से प्रतिबद्ध है। वर्ण व्यवस्था अर्थात् द्वेश, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध भावना।''[5] दुसरे एक विद्वान वामन इंगले जी का कहना है, '' हिंदु धर्म की जिन रूढियों ने जिन्हें जन्मतः ही अस्पृश्यता प्रदान की है, ऐसे अस्पृश्योंने अपने उपर के इस जन्म सिद्ध कनिषटता के विरोध में जिस साहित्य में आवाज उठाई है, वह साहित्य दलित है।''[6] डा. कालिचरण स्नेही का मानना है - '' मेरे विचार में दलित साहित्य, मानव मुक्ति का साहित्य तो है ही, साथ ही यह शास्त्रों से मुक्ति का साहित्य भी है। इस साहित्य में दलितोत्थान की मूल चेतना के साथ-साथ आम आदमी के दुःख दर्द, उसके सामाजिक सरोकार

आदि को नए सिरे से अभिव्यक्त करने का आग्रह है।''[7] दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का मत है- ''दलितों के लिए दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित है। यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। सम्पूर्ण विज्ञान इसकी दृष्टि और पीड़ित मानव इसका उद्धार है। दलित साहित्य वह प्रकाश पुँज है, जो अंधेरे में उतरा है।''[8]

उपरोक्त मतों पर विचार किया जाये तो ऐसा दिखाई देता है कि, जिन विद्वानों ने साहित्यकार के जन्म-दलितत्व को प्रधानता दी है, वह दलित साहित्य विकास की दृष्टि से प्रतिकुल परिणामकारक है। साहित्यकार किस जाति या सामाजिक स्तर का है? इसका दलित साहित्य के स्वरूप पर कैसा प्रभाव पड़ेगा? इस मर्यादा पर विचार किया जाना जरूरी है। क्योंकि साहित्य कभी दलित नहीं होता। हाँ, यह अवश्य है कि जिसने भोगा हो, झेला हो उसकी अभिव्यक्ति प्रमाणिक हो सकती है। दूसरी ओर दलितेत्तर साहित्यकार भी दलित जीवन का चित्रण कल्पक सहानुभूति से कर सकते हैं। हिंदी साहित्य में ऐसे दलितेत्तर साहित्यकार के रूप में रामदरश मिश्र, अमृतलाल नागर, यादवेंद्र शर्मा, मिथलेश्वर, मदन दीक्षित आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। जिनके साहित्य में दलित चेतना उभरकर आती है।

दलित चेतना का आरंभः-

भारतीय समाज व्यवस्था यह वर्णाधिष्ठित है। इसमें जाति के आधार पर चार वर्ण किए गये हैं- ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शुद्र। अंतिम वर्ण में संम्मिलित सभी पिछड़ी जन-जातियों को दलित कहाँ गया है। जिस प्रकार मराठी साहित्य में 'दलित साहित्य' के रूप में एक स्वतंत्र प्रवाह सामने आता है, वैसी स्थिति हिंदी साहित्य में नहीं पायी जाती। महाराष्ट्र में फुले, डा.आंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर जिन साहित्यकारों ने मराठी में लेखन किया वह साहित्य 'दलित साहित्य' के नाम से पहचाना जाता है। वैसे हिंदी साहित्य में दलित जन-जीवन का चित्रण पेरमचंद युग से ही होता आया हैं, किन्तु कुछ दलित विद्वानों के मतानुसार उसमें 'स्वानुभूति' का अभाव है। अतः वह दलित साहित्य की कसौटी पर नहीं उतरता किन्तु यह मानना असंगत-सा प्रतित होता है। क्योंकि स्वयं आंबेडकर जी ने भी इस बात पर बल दिया है कि, ''देश की निम्नतर जातियों में पीड़ित वर्ग की मानसिकता, निकाल बाहर करने के लिये उस जाति में परिवर्तन तथा प्रबोधन की आव'यकता है।''[9] इस प्रकार की मानसिकता से उबार ने का कार्य प्रेमचंद, रामदरश मिश्र, रेणु जैसे अनेक साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है। परतंत्रता के समय में तो फुले, आंबेडकर के विचारों के प्रभाव को हम आसानी से परिलक्षीत कर सकते हैं। जब उनके विचारों का प्रभाव मराठी के साहित्यकारों पर पड़ सकता है तो, क्या हिंदी के साहित्यकार उनके वैचारिक प्रभाव से अछुते रहेगें? अतः इस बात को भी मानना पड़ेगा कि, हिंदी साहित्य में भी दलित जीवन का चित्रण सक्षमता के साथ हुआ है और वर्तमान में इस परंपरा में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कुसूम मेघवाल, प्रेमशंकर, रत्नकुमार साँभरिया, दयानन्द बटोही डा. सुर्यनारायण रणसुभें आदि अनेक साहित्यकार इस धारा से जुड़े हुये हैं।

हिंदी उपन्यास साहित्य में दलित चेतनाः-

देश की निम्नतर जातियों, दलित पीड़ित वर्ग की मानसिकता, जिसमें वर्णवादी जाति-व्यवस्था के कारण जन्मीं हीनताग्रंथी को निकाल बाहर करने के लिए उस जाति में परिवर्तन तथा प्रबोधन की आवश्यकता थी। डा. आंबेडकर जी ने उनके भौतिक और दिमागी गुलामी के निर्मूलन के लिए तथा दलित जाति में राजनीतिक अधिकारों को जगाने के लिये, उनकी शिक्षा पर बल दिया। जिससे वे दासता के कड़े बंधनों से मुक्त हो सके। उनकी ऐसी प्रभावी विचार धारा का अनेक साहित्यकारों पर प्रभाव पड़ा।

हिंदी दलित साहित्य में उपन्यास विधा ने अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई है। दलितों के जीवन को आधार बनाकर यूँ तो कई उपन्यास लिखें गए हैं, किन्तु दलित उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पन' उपन्यास को पहला दलित उपन्यास माना गया है। इसके उपरांत श्री सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सवेर' तथा मोहनदास नैमि'ाराय का 'मुक्तिपर्व' जैसे उपन्यास प्रकाशित हुए जिनमें दलित शोषण की समस्याओं का चित्रण हुआ है।

सामान्यतः जिस साहित्य में दलित जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति होती है, उसे दलित साहित्य कहा गया है, तो दूसरी ओर दलित साहित्य के कुछ पुरस्कर्ताओं का यह भी मानना है कि, दलित जातियों में जन्में रचनाकारों की रचनाओं को ही दलित साहित्य में सम्मिलित किया जाना चाहिए। उनका मानना समिचिन नहीं क्योंकि कई दलितेत्तर रचनाकारों ने जैसे- अमृतलाल नागर-'नाच्यों बहुत गोपाल', मदन दीक्षित-'मोरी की ईंट', यादवेंद्र शर्मा-'आँखरी साँस तक', रेणु-'मैला-आंचल', मिथिले'वर-'यह अंत नही' आदि ने अपने साहित्य में दलित जीवन के कई पहलुओं को सक्षमता के साथ उभारा है। किन्तु दलित साहित्य की उपरोक्त परिधि को देखा जाए तो हिंदी जगत में दलित साहित्य विगत दो, तीन दशकों की ही देन है, जिसकी प्रेरणा का श्रेय महाराष्ट्र के फुले, आंबेडकर के विचारों को ही जाता है।

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में दलितों के जन-जीवन का चित्रण सक्षक्त रूप में हुआ है। जिसमें दलित जीवन के अनेकविध पहलुओं को उभारा गया है। दलितों के होनेवाले दमन, अन्याय-अत्याचार के फलस्वरूप प्रचलित व्यवस्था के विरोध में हुए संघर्ष, अपने अधिकार प्राप्ति के लिए किया गया संघर्ष, स्थितियों से बाहर निकलने के प्रयास आदि को आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में अपनी पूर्ण व्यापकता के साथ कई रचनाकारों ने अभिव्यक्ति प्रदान की है। इन रचनाकारों में प्रमुखतः प्रेमचंद, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह, रेणू, मिथिलेश्वर, विवेकी राय, शरणकुमार लिंबाले, रमानाथ यादव, रामदेव शुक्ल आदि अनेक रचनाकर है।

हिंदी उपन्यासों मंे व्यक्त दलित विमर्श ब्राह्मणवाद के प्रति विशेष कटू है, 'गोदान' में 'मातादीन' (ब्राह्मण) को चमार बनाया जाता है, जो कि 'सिलिया' (चमारिन) के जीवन से खेलता है। नागार्जुन कृत 'वरूण के बेटे' में 'मछुआ' जाति के जीवन संघर्ष का मार्मिक चित्रण हुआ है। ऐसी घटनाएँ समाज में हो रहे दलित-उत्पीड़न के विरोध में उठाई गई आवाज ही है।

सदियों से ही इस वर्ग के लोगों को दासता के कड़े बंधनों में जकड़ा गया है। जो दासता आधुनिक युग में भी समाप्त नहीं हुई जिसके कारण आज भी समाज में दलितों पर

किये गए अन्याय-अत्याचार के मामले सामने आते हैं। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में इस दासता के विरोध में आवाज उठाने वाले रचनाकारों में प्रेमचंद के साथ नागार्जुन, श्रीलाल शुक्ल, जगदीश गुप्त, मिथिले'वर आदि रचनाकार अग्रणी है। प्रेमचंद ने अपने 'गोदान' में अन्याय के विरोध में किये गए प्रतिरोध का सशक्त चित्रण किया है। सदियों से नारी को दलितों में भी दलित समझा गया है, उसकी देह भोग-विलास का साधन बन गयी थीं। उच्च वर्ग के लिये तो निम्न वर्ग की नारी अपनी हवस मिटाने का प्रमुख साधन ही बनी हुई थी। प्रेमचंद अपने 'गोदान' में कहते हैं, ''सिलिया का तन और मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था। सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशिन थी, और कुछ नहीं।''[10] जिस 'मातादीन' ने 'सिलीया' का जीवन नरकमय बना दिया था, उसके विरोध में आवाज उठाई जाती है। जो 'सिलिया' उसके लिये भोग-विलास का साधन थी, उसी के कारण उसे अपने धर्म से भ्रष्ट होना पड़ता है। 'हरखु' का यह कथन की, ''तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें ब्राह्मण बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार हैं जब यह समरथ नहीं है, तो फिर तुम भी चमार बनो। ..... हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धरम हमें दो।''[11] हरखु द्वारा उठाई गई अवाज दलित चेतना एवं संघर्ष की ही सूचक है, जिसे प्रेमचंद जी ने 1936 में उठाया था। समाज में घटित ऐसी घटनाओं के विरोध में प्रेमचंद जी ने तद्युगीन समय में ठोंस आवाज उठाई थी।

प्रेमचंद के उपरांत 'रेणु'जी ने अपने 'मैला आंचल' (1954) में गाँवों में व्याप्त जातिय विषमता पर प्रकाश ड़ाला है। जिस गाँव में हर एक टोली जाति के नाम से पहचानी जाती हो, (हरिजन टोला, अहिर टोला, ततमाटोला, कायस्थटोला, गुअरटोला, यादवटोला आदि) वहाँ पर कितनी मात्रा में जातीय वैमनस्य तथा विषमता होगी? इसका हम अंदाजा लगा सकते हैं। सामान्यों पर अन्याय-अत्याचार करने वालों की कमी न थी, पूँजिवादी व्यवस्था ने इनका जीवन नरकमय बना दिया था। सेठ, साहुकार, पूँजिपति मूल से दूगना, वसूलने पर भी खामोश न बैठते थें। परिणामतः पिछड़े वर्ग का जीवन अनगीनत यातनाओं को सहते हुये बीता जा रहा था। जिसकी अभिव्यक्ति रेणू जी ने इस प्रकार की है- ''धान नापनेवाला धान की ढेरी से धान नापता जाता है। ... बादरदास को एक मन!.... सानाय ततमा को तीन पसेरी। .... सादा कागज पर अँगूठे का निशाण देते जाओ। भादों महीने में यदि भदै धान चुका दोगे तो डेढ़ मन का तीन मन। सीधा हिसाब है।''[12]

शिवप्रसाद सिंह ने भी अपने 'अलग-अलग वैतरणी' में दलित चेतना को सजीवता के साथ उभारने का प्रयास किया है। इसमें दलितों का एक जुलूस निकल पड़ता है, 'सुगनी' को सरजूसिंह की परिणिता का अधिकार दिलाने हेतु। जो कि अधिकार प्राप्ति तथा समाज चेतना एवं संघर्ष का ही सूचक है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी अपने साहित्य में दलित जीवन को बड़ी सजिवता के साथ उभारा है। 'सलाम' जैसी प्रथाएँ दलितों पर किये गये अत्याचार का ही परिणाम है, जो कि पुरातन खोकली मानसीकता के फलस्वरूप समाज में आज भी पायी जाती है। ऐसी अमानवीय प्रथा-परंपराओ के विरोध में उन्होंने ठोंस रूप में आवाज उठाई हैं।

साहित्य में सामान्य जन-जीवन का चित्रण अपनी पूर्ण व्यापकता के साथ होने लगा। अन्याय के विरोध में आवाज उठाने की ताकद उनमें आयी। समाज में कई ऐसे प्रसंग घटित होते हैं, जिनमें उच्च वर्गीयों द्वारा निम्न वर्ग के लोगों पर अन्याय-अत्याचार किए जाते है। किसी की इज्जत के साथ खेलना तो, किसी को गाँव की जात-बिरादरी से बेदखल करना, ऐसी घटनाएँ घटित होती है। ऐसी घटनाओं के विरोध में 'जल टुटता हुआ' में आवाज उठाई गई है। 'बिरजू' का यह कथन कि, '' सतीश भइया, अब तो जेल का आदी हो ही गया हूँ। कितनों को पार लगाकर एक बार फिर जेल हो आऊँ या चाहे फाँस पर चढ़ जाऊँ... दीनदयाल और दौलत को नहीं छोडूँगा...।''[13] तद्युगीन दलित जीवन संघर्"ा की अभिव्यक्ति कराता है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, सदियों से हमने जिन्हें दासता के कड़े बंधनों में ढकेल कर, उन पर अन्याय-अत्याचार किये है, वर्तमान में भी उसी प्रकार की स्थिती? 'हरखु' का यह कथन उन तमाम सोये हुए दलितों में चेतना प्रदान कराने का प्रयास ही है। जिसकी अभिव्यक्ति 'रामदरश' जी ने सक्षक्त रूप में की है।

नागार्जुन कृत 'बलचनमा' इस उपन्यास में पिछड़े वर्ग पर किये गए अन्याय-अत्याचारों का मार्मिक चित्रण हुआ है। जो तद्युगीन समय में दलितों पर हुए अत्याचारों की अभिव्यक्ति करता है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र 'बलचनमा' परिश्रमी एवं सरल प्रकृति का है। वह अपने कार्य के प्रति सचेत है। क्योंकि श्रम ही उसका जीवन है, पर जब मुखिया उसकी जमीन हथियाना चाहता है तो उसकी दादी से रहा नहीं जाता। लपककर वह मालिक के पैर पकड़ लेती है और भर्राई आवाज में कहती है, ''नहीं सरकार, ललुआ की कमाई की निशानी है वह खेत। उसे न छीनें। क्या कमी है आपको.....''[14]

दलित साहित्य यह मूलतः आक्रोश का, अन्याय के विरोध में लड़ने का, अपने अधिकारों की प्राप्ति करने का, शोषण के विरोध में आवाज उठाने का साहित्य है। दलितों पर हुए अन्याय-अत्याचारों की अभिव्यक्ति के साथ विरोध, संघर्ष, तथा अधिकार प्राप्ति जैसे अनेकविध पहलुओं पर हिंदी उपन्यासों में प्रकाश ड़ाला गया है। ज्योतिष्य जोशि के 'सोनबरसा' में अधिकार प्राप्ति की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार हुई है- ''समान होने के लिए दलित जातियों को शिक्षा चाहिए, आर्थिक मजबूती चाहिए। इसके लिए डर नहीं, सीना तानकर जीने का अभ्यास करना होगा। अधिकार मिलते नहीं तो छीनना होगा। अजय की बातों से रूपाली को संतोष होता, वह उसे बाँहों में भरकर चूमने लगती। रूपाली तय कर चुकी थी कि अजय अगर उसका साथ देता है तो उस स्थिति का मुकाबला वह जरूर करेगी। देखेगी कि कैसे बदलाव नहीं आता। वह भी मनुष्य है। उसके शरीर में वही रक्त है जो सभी में होता है। वह क्यों और कैसे अछूत हो गई और दूसरे लोग उसे छाँटने वाले कैसे हो गए? वह खूँटे में बँधी रहने वाली नहीं है। उसे प्रतिरोध करना है। अजय को जब रूपाली अपना निर्णय बताती तो वह बहुत खु'ा होता। कहता कि यही तो वह चाहता है।''[15] मिथिले'वर के 'यह अंत नहीं' में दलितों की सुझ बूझ तथा समझदारी का परिचय कुछ इस प्रकार मिलता है- '' हम लोगों की भलाई इसी में है कि बड़टौली के लोग आपस में जूझते रहें। वे आपस में भिड़े रहेंगे तो हम बाजी मार लेंगे। उनके बीच फुट बनाकर ही हम अपना अधिकार ले सकेंगे।''[16] यह कथन दलित वैचारिक प्रगल्भता को ही सूचित करता है।

अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि, हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना विविध रूपों में व्याप्त है। सदियों से जिनका मुनश्यत्व रौंदा गया था, जिन्हें कुचला गया था, जिन्हें दासत्व की परिधि में ही रखा गया था, जो कभी 'हरिजन' तो कभी शुद्र' या 'अछूत' कहें जाते थे, उनके अधिकार बोध को, स्वंतंत्रता को तथा न्याय को आधुनिक हिंदी उपन्यासकारों ने यथार्थ की धरातल पर चित्रित कर एक नए प्रवाह का आरंभ किया है जिसका भविष्य यकिनन उज्वल है। वैसे तो चेतना सदैव जीवन में प्रवाहित होती रहती है। वह सभी में व्याप्त होती है इसीलिए सम्पूर्ण मानवता उस मूल चेतना का सूचक है। विशेष समय-संदर्भ में लक्षित होने वाली दलित की समूची संवेदनात्मक वैचारिक मानसिकता और मूल्यबोध जिन उपन्यासों में चित्रित हुआ है, वें सभी उपन्यास दलित साहित्य के अंतर्गत आते हैं, ऐसा कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भः-

1. ''दलित शब्दाची व्याक्ष्या केवळ बौद्ध अथवा मागासवर्गीयच नव्हे, तर जे जे पिळले गेलेले श्रमजीवी आहेत ते सर्व 'दलित' या व्याखेत समाविष्ट होतात.'' दलित साहित्य वेदना व विद्रोह- भालचंद्र फड़के, श्रीविद्या प्रकाशन, पूणे सं. दूसरा 1989. पृ. 29.
2. ''दलित म्हणजे अनुसूचित जाती जमाती, बौद्ध, कष्टकरी जनता, कामगार, भूमिहीन, शेतमजूर, भटक्या जमाती, आदिवासी इत्यादी।'' दलित स्वकथनेः साहित्यरूप- प्रा.डा.सौ.आरती कुसरे-कुलकर्णी, उदय प्रकाशन, नागपूर. सं.1991. पृ. 2.
3. ''केवळ बौद्ध अथवा मागासवर्गीयच नव्हे तर जे जे पिळले गेलेले असे श्रमजीवी आहेत ते सर्व दलित मानण्यामुळे अन्याय होतो।'' दलित स्वकथनेः साहित्यरूप- प्रा.डा.सौ.आरती कुसरे-कुलकर्णी, उदय प्रकाशन, नागपूर. सं.1991. पृ. 2.
4. ''दलित साहित्याचा आधार एखाद्या जातीत जन्माला येणे हा नसतो. तो आधार सामाजिक जाणिवेतच शोधला पाहिजे.'' दलित स्वकथनेः साहित्यरूप-प्रा.डा.सौ.आरती कुसरे-कुलकर्णी, उदय प्रकाशन, नागपूर. सं.1991. पृ. 3
5. हिंदी साहित्य में दलित अस्मिताः डा. कालीचरण 'स्नेही', आराधना ब्रदर्स, कानपुर, सं.2006 पृ. 88
6. ''हिंदू धर्मातील रूढींनी ज्यांना जन्मजात अस्पृश्यता दिली आहे. अशा अस्पृश्यांनी आपल्यावरील या जन्मसिद्ध कनिष्ठत्वाच्या विरूद्ध आवाज ज्या साहित्यात उठविलेला आहे ते दलित साहित्य होय.'' दलित स्वकथनेः साहित्यरूप-प्रा.डा.सौ.आरती कुसरे-कुलकर्णी, उदय प्रकाशन, नागपूर. सं.1991. पृ. 7.
7. हिंदी साहित्य में दलित अस्मिताः डा.कालीचरण 'स्नेही', आराधना ब्रदर्स, कानपुर, सं.2006 (भूमिका)
8. हिंदी और मराठी का दलित साहित्यः एक मुल्यांकन-डा.सुनिता साखरे, अमन प्रकाशन, कानपूर. सं.2008. पृ.16.
9. 'समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में जन चेतना- डा. अरूणा लोखण्डे, विकास प्रकाशन कानपूर, सं.1996, पृ.32.
10. गोदान-प्रेमचंद, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ. पृ. 213.

11. गेदान-प्रेमचंद, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ पृ. 214.
12. मैला आंचल- फणि'वरनाथ रेणु, राजकमल पेपरबैक्स, सं. 1997. पृ. 122.
13. जल टूटता हुआ- रामदरश मिश्र. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दल्ली. सं. 1995. पृ. 228
14. बलचनमा- नागार्जून, किताब महल, प्रकाशन, इलाहबाद, सं. 1978. पृ. 14
15. सोनबरसा-ज्योतिष्य जोशी पृ. 104.
16. यह अंत नहीं- मिथिलेश्वर पृ. 62.

******